६

समाज-सुधार की स्वर्णिम-रेखाएँ

समाज के सुधार के लिए, उसके उत्थान के लिए हम में सामूहिक चेतना का होना निहायत जरूरी है। व्यक्ति एवं अपने परिवार के बहुत छोटे-से सीमित दायरे में सोचने की धारणा हमें बदल देनी चाहिए और सामाजिक रूप में सोचने की प्रवृत्ति अपने अन्तर् में जागृत करनी चाहिए। धर्म और मोक्ष का मार्ग इसी प्रवृत्ति में सन्निहित है। मैं समझता हूँ कि धर्म और मोक्ष का मार्ग इससे भिन्न नहीं है। भगवान् महावीर ने अपनी उक्त भावना इसी रूप में व्यक्त की है—

"सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पाव-कम्मं न बंधइ॥"

—दशवैकालिक, ४, ९.

पाप और उससे मुक्ति :

एक बार भगवान् महावीर से यह प्रश्न पूछा गया कि—"जीवन में पग-पग पर पाप-ही-पाप दीखता है। जीवन का समस्त क्षेत्र पापों से घिरा हुआ है। और, जो धर्मात्मा बनना चाहता है, उसे पापों से बचना होगा, किन्तु पापों से बचाव कैसे हो सकता है?" भगवान् महावीर ने समाधान दिया—"पहले यह देख लो कि तुम संसार के प्राणियों के साथ एकरस हो चुके हो या नहीं? तुम्हारी सद्भावना उनके साथ एकरूप हो चुकी है या नहीं? तुम्हारी आँखों में उन सबके प्रति प्रेम बस रहा है या नहीं? यदि तुम उनके प्रति एकरूपता लेकर चल रहे हो, संसार के प्राणिमात्र को समभाव की दृष्टि से देख रहे हो, उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझ रहे हो, तो तुम्हें पाप-कर्म कभी भी नहीं बाँध पाएँगे।

अहिंसा-भावना का विकास :

अहिंसामय जीवन के विकास का भी एक क्रम है। कुछ अपवादों को अलग कर दिया जाए, तो साधारणतया उस क्रम से ही अहिंसात्मक भावना का यथोचित विकास होता है। मूल रूप में मनुष्य अपने आप में ही घिरा रहता है, अपने शरीर के मोह को लेकर उसी में बँधा रहता है। यदि मनुष्य में कुछ विकास क्रान्ति आई भी, तो वह अपने परिवार को महत्त्व देना शुरू कर देता है। तब वह अपने क्षुद्र सुख-दुःख से बाहर निकल कर माता, पिता, पत्नी और सन्तान आदि के पालन-पोषण के काम में लग जाता है। परिस्थिति विशेष में भले ही वह स्वयं भूखा रह जाए, किन्तु परिवार को भूखा नहीं रहने देता। खुद प्यासा रहकर भी परिवार को पानी पिलाने के लिए सदा तैयार रहता है। स्वयं बीमार रहता है, किन्तु माता, पिता, और सन्तान के लिए वह अवश्य औषधियाँ जुटाता है। इस रूप में उसकी सहानुभूति, आत्मीयता और संवेदना व्यक्ति के क्षुद्र घेरे को पार करके अपने कुटुम्ब में विकास पाती है। इस रूप में उसकी अहिंसा की वृत्ति आगे बढ़ती है और वह सम्यक् रूप से विकसित होने की ओर गतिशील होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनासक्त सेवा : धर्म का आधार :

अहिंसा का विकास होने पर भी यदि मनुष्य को निजी स्वार्थ घेरे रखता है, तो मानना चाहिए कि अमृत में जहर मिला है और उस जहर को अलग कर देना ही अपेक्षित है। अतः यदि मनुष्य अपने परिवार के लिए भी कर्तव्य-बुद्धि से काम कर रहा है, उसमें आसक्ति और स्वार्थ का भाव नहीं रख रहा है और उनसे सेवा लेने की वृत्ति न रख कर अपनी सेवा का दान देने की ही भावना रखता है, बच्चों को उच्च शिक्षण दे रहा है, समाज को सुन्दर और होनहार युवक देने की तैयारी कर रहा है, उसकी भावना यह नहीं है कि बालक होशियार होकर समय पर मेरी सेवा करेगा तथा मेरे परिवार में चार चाँद लगाएगा, अपितु व्यापक दृष्टि से आस-पास के समाज, राष्ट्र एवं जगत् की उन्नति में यथोचित योगदान करेगा—इस रूप में यदि मानव की उच्च भावना काम कर रही है, तो आप इस उच्च भावना को अधर्म कैसे कहेंगे ? मैं नहीं समझता कि वह अधर्म है।

मोह और उत्तरदायित्व :

जैन-धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से मोह-क्षोभ को दूर करने की बात कहता है, परन्तु वह प्राप्त उत्तरदायित्व को यों ही झटक कर फेंक देने की बात कदापि नहीं कहता। श्रावकों के लिए भी यही बात है और साधुओं के लिए भी। साधु अपने शिष्य को पढ़ाता है। यदि इस भावना से पढ़ाता है, कि शिष्य पढ़कर अपने जीवन को उच्च बना सके, अपना कल्याण कर सके और साथ ही अपने संघ एवं समाज का भी कल्याण साध सके, तो यह एक सुन्दर बात है। यदि इसके विपरीत स्वार्थमयी भावना को लेकर पढ़ाता है कि मेरे पढ़ाने के प्रतिदान स्वरूप वह मेरे लिए आहार-पानी ला दिया करेगा, मेरी सेवा किया करेगा, तो यह उचित नहीं है। ऐसी क्षुद्र-वृत्ति से अस्पृष्ट रह कर, यदि गुरु योग्य शिक्षा द्वारा अपने शिष्य को गुरु बनने की कला सिखा रहा है, तो भगवान् कहते हैं कि वह गुरु अपने लिए महत्त्वपूर्ण निर्जरा का कार्य कर रहा है, अपने पाप-कर्मों को खपा रहा है। यों तो कभी कोई गुरु अपने शिष्य के मोह में फंस भी जाता है, किन्तु जैनधर्म उस मोह से बचने की बात करता है, उत्तरदायित्व को दूर फेंकने की नहीं। यही बात गृहस्थ के विषय में भी समझनी चाहिए। मोह और कर्तव्य के अन्तर को ठीक तरह समझ लेना चाहिए।

समाज-सुधार का सही दृष्टिकोण :

आप जिस समाज में रह रहे हैं, आपको जो समाज और राष्ट्र मिला है, उसके प्रति सेवा की उच्च भावना आप अपने मन में संजो कर रखें, अपने व्यक्तित्व को समाजमय और देशमय और अन्त में सम्पूर्ण प्राणिमय बना डालें। आज दे रहे हैं, तो कल ले लेंगे, इस प्रकार की अन्दर में जो सौदेबाजी की वृत्ति है, स्वार्थ की वासना है—उसे निकाल फेंकें और फिर विशुद्ध कर्तव्य-भावना से, निःस्वार्थ भावना से जो कुछ भी करेंगे, वह सब धर्म बन जाएगा। मैं समझता हूँ, समाज सुधार के लिए इससे भिन्न कोई दूसरा दृष्टिकोण नहीं हो सकता।

समाज सुधार का सही मार्ग :

आप समाज-सुधार की बात करते हैं, किन्तु मैं कह चुका हूँ कि समाज नाम की कोई अलग चीज ही नहीं है। व्यक्ति और परिवार मिल कर ही समाज कहलाते हैं, अतएव समाज-सुधार का अर्थ है—व्यक्तियों का और परिवारों का सुधार करना। पहले व्यक्ति को सुधारना और फिर परिवार को सुधारना। और जब अलग-अलग व्यक्ति तथा परिवार सुधर जाते हैं, तो फिर समाज स्वयमेव सुधर जाएगा।

आप समाज को सुधारना चाहते हैं न ? बड़ी अच्छी बात है। आपका उद्देश्य प्रशस्त है और आपकी भावना स्तुत्य है, किन्तु यह बतला दीजिए कि आप समाज को नीचे से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधारना चाहते हैं या ऊपर से ? पेड़ को हरा-भरा और सजीव बनाने के लिए पत्तों पर पानी छिड़क रहे हैं या जड़ में पानी दे रहे हैं ? अगर आप पत्तों पर पानी छिड़क कर पेड़ को हरा-भरा बनाना चाहते हैं, तो आपका उद्देश्य कदापि पूरा होने का नहीं है !

आज तक समाज-सुधार के लिए जो तैयारियाँ हुई हैं, वे ऊपर से सुधार करने की हुई हैं, अन्दर से सुधारने की नहीं। अन्दर से सुधार करने का अर्थ यह है कि एक व्यक्ति जो चाहता है कि समाज की बुराइयाँ दूर हों, उसे सर्वप्रथम अपने व्यक्तिगत जीवन में से उन बुराइयों को दूर कर देना चाहिए। उसे गलत विचारों, मान्यताओं और त्रुटिपूर्ण व्यवहारों से अपने आपको बचाना चाहिए। यदि वह व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में उन बुराइयों से मुक्त हो जाता है, और उन त्रुटियों को ठुकरा देता है, तो एकदिन वे परिवार में से भी दूर हो जाएँगी और फल-स्वरूप समाज अपने आप सुधर जाएगा।

समाज सुधार की बाधाएँ :

इसके विपरीत यदि कोई सामाजिक बुराइयों को दूर करने की बात करता है, समाज की रूढ़ियों को समाज के लिए राहु के समान समझता है, और उनसे मुक्ति में ही समाज का कल्याण मानता है, किन्तु उन बुराइयों और रूढ़ियों को न स्वयं ठुकराता है, ठुकराने की हिम्मत भी नहीं करता है, तो इस प्रकार की दुर्बलता से समाज का कल्याण कदापि संभव नहीं है। यह दुर्बल-भावना समाज-सुधार के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा है। कोई भी सुधार हो, उसका प्रारंभ सब से पहले स्वयं अपने से ही करना चाहिए।

समाज सुधार और रीति-रिवाज :

आपके यहाँ विवाह आदि सम्बन्धी जो अनेक रीतियाँ आज प्रचलित हैं, वे किसी जमाने में सोच-विचार कर ही चलाई गई थीं। और जब वे चलाई गई होंगी, उससे पहले संभवतः वे प्रचलित न भी रही हों। संभव है, आज जिन रीति-रिवाजों से आप चिपटे हुए हैं, वे जब प्रचलित किए गए होंगे, तो तत्कालीन पुरातन मनोवृत्ति के लोगों ने नयी चीज समझ कर उनका विरोध ही किया हो, और उन्हें अमान्य भी कर दिया हो। किन्तु तत्कालीन समाज के दूरदृष्टि नायकों ने साहस करके उन्हें अपना लिया हो और फिर वे ही रीति-रिवाज धीरे-धीरे सर्वमान्य हो गए हों। स्पष्ट है, उस समय इनकी बड़ी उपयोगिता रही होगी। परन्तु इधर-उधर के सम्पर्क में आने पर धीरे-धीरे उन रीति-रिवाजों में बहुत-कुछ विकृतियाँ आ गईं। समय बदलने पर परिस्थितियों में भारी उलट-फेर हो गया। मुख्यतया इन दो कारणों से ही उस समय के उपयोगी-रीति-रिवाज आज के समाज के लिए अनुपयोगी हो गए हैं। यही कारण है कि उन रीति-रिवाजों का जो हार किसी समय समाज के लिए अलंकार था, वह आज बेड़ी बन गया है। इन बेड़ियों से जकड़ा हुआ समाज उनसे मुक्त होने को आज छटपटा रहा है। और जब कभी उनमें परिवर्तन करने की बात आती है, तो लोग कहते हैं कि पहले समाज उसे मान्य करले, फिर हम भी मान लेंगे, समाज निर्णय करके अपना ले, तो हम भी अपना लेंगे। यह कदापि उपयुक्त तथ्य नहीं है। इस मनःस्थिति से कभी कोई सामाजिक या धार्मिक सुधार संभव ही नहीं है।

पूर्वजों के प्रति आस्था :

आज जब समाज-सुधार की बात चलती है, तो कितने ही लोग यह कहते पाए जाते हैं कि हमारे पूर्वज क्या मूर्ख थे, जिन्होंने ये रिवाज चलाये ? निस्सन्देह अपने पूर्वजों के प्रति इस प्रकार आस्था का जो भाव उनके अन्दर है, वह स्वाभाविक है। किन्तु ऐसा कहने वालों को अपने पूर्वजों के कार्यों को भी भली-भाँति समझना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि उनके पूर्वज उनकी तरह स्थितिपूजक नहीं थे। उन्होंने परम्परागत रीति-रिवाजों में, अपने समय और अपनी परिस्थितियों के अनुसार सुधार किए थे। उन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधार न किया होता और उन्हें ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण बनाए रक्खा होता, तो हमारे सामने ये रिवाज होते ही नहीं, जो आज प्रचलित हैं। फिर तो भगवान् ऋषभदेव के जमाने में जैसी विवाह-प्रथा प्रचलित थी, वैसी-की-वैसी आज भी प्रचलित होती। किन्तु बात यह नहीं है। काल के अप्रतिहत प्रवाह में बहते हुए समाज ने, समय-समय पर सैकड़ों परिवर्तन किए। यह सब परिवर्तन करने वाले पूर्वज लोग ही तो थे। आपके पूर्वज स्थिति-पालक नहीं थे। वे देश और काल को समझ कर अपने रीति-रिवाजों में परिवर्तन भी करना जानते थे और समय-समय पर परिवर्तन करते भी रहते थे। इसी फलस्वरूप यह समाज आज तक टिका हुआ है, सामयिक परिवर्तन के बिना समाज टिक नहीं सकता।

पूर्वजों के प्रति आस्था का सही रूप :

एक बात और विचारणीय है कि जो पोशाक पूर्वपुरुष पहनते थे, क्या वही पोशाक आज आप पहनते हैं? पूर्वज जो व्यापार-धन्धा करते थे, क्या वही आप आज करते हैं? पुरखा लोग जहाँ रहते थे, क्या वहीं आज आप रहते हैं? आपका आहार-विहार क्या अपने पूर्वजों के आहार-विहार के समान ही है? यदि इन सब बातों में परिवर्तन कर लेने पर भी आप अपने पूर्वजों की अवगणना नहीं कर रहे हैं और उनके प्रति आपकी आस्था ज्यों-की-त्यों विद्यमान है, तो क्या कारण है कि सामाजिक रीति-रिवाजों में समयोचित परिवर्तन कर लेने पर वह आस्था विद्यमान नहीं रह सकती?

मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि यदि यह आस्था अपने पूर्वजों के प्रति सच्ची आस्था है, तो हमें उनके चरण-चिन्हों पर चल कर उनका अनुकरण और अनुसरण करना चाहिए। जैसे उन्होंने अपने समय में परिस्थितियों के अनुकूल सुधार करके समाज को जीवित रखा और अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया, उसी प्रकार आज हमें भी परिस्थितियों के अनुकूल सुधार करके, उसमें आए हुए विकारों को दूर करके, समाज को नव-जीवन देना चाहिए और अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देना चाहिए।

अंध-प्रशंसा नहीं : सही अनुकरण :

वह पुत्र किस काम का है, जो अपने पूर्वजों की प्रशंसा के पुल तो बाँधता है, किन्तु जीवन में उनके अच्छे कार्यों का अनुकरण नहीं करता! सपूत तो वह है, जो पूर्वजों की भाँति, आगे आकर, समाज की स्थिति में कल्याणकारी गतिशील सुधार लाता है और इस बात की परवाह नहीं करता कि दूसरे कौन क्या कहते हैं? सुधार करते हैं या नहीं? यदि पूर्वजों ने कायरता नहीं दिखलाई, तो आप आज कायरता क्यों दिखाते हैं?

धारणाओं की पंगुता :

आज सब जगह यही प्रश्न व्याप्त है। प्रायः सभी यही सोचते रहते हैं और सारे भारत को इसी मनोवृत्ति ने घेर रखा है कि—दूसरे वस्तु तैयार कर दें और हम उसका उपभोग कर लें। दूसरे भोजन तैयार कर दें और हम खा लिया करें। दूसरे कपड़े तैयार कर दें और हम पहन लें। दूसरे सड़क बना दें और हम चल लिया करें। स्वयं कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकते, प्रयत्न नहीं कर सकते और जीवन के संघर्षों से टक्कर भी नहीं ले सकते। अपना सहयोग दूसरों के साथ न जोड़ कर, सब यही सोचते हैं कि दूसरे पहले कर लें, तो फिर मैं उसका उपयोग कर लूं और उससे लाभ उठा लूं।

आज समाज-सुधार की बातें चल रही हैं। जिन बातों का सुधार करना है, वे किसी जमाने में ठीक रही होंगी, किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है और वे बातें भी सड़-गल गई हैं तथा उनके कारण समाज बर्बाद हो रहा है अतः परिवर्तन उपेक्षित है। किन्तु खेद है, जब कोई सुधार करने का प्रश्न आता है, तो कहा यह जाता है कि पहले समाज ठीक कर ले, तो फिर मैं ठीक कर लूं, समाज रास्ता बना दे, तो मैं चलने को तैयार हूँ। परन्तु कोई भी आगे बढ़कर पुरुषार्थ नहीं करना चाहता, साहस नहीं दिखाना चाहता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज-सेवक का कर्तव्य :

काल-प्रवाह में बहते-बहते जो रिवाज सड़-गल गए हैं, उनके प्रति समाज को एक प्रकार से चिरंतनता का मोह हो जाता है। समाज परम्परा के सड़े-गले शरीर को भी छाती से चिपका कर चलना चाहता है। यदि कोई चिकित्सक उन सड़े-गले हिस्सों को अलग करना चाहता है, समाज को रोग से मुक्त करना चाहता है और ऐसा करके समाज के जीवन की रक्षा करना चाहता है, तो समाज तिलमिला उठता है, चिकित्सक को गालियाँ देता है और उसका अपमान करता है। किन्तु उस समय समाज-सेवक का क्या कर्तव्य है? उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं जिस समाज की भलाई के लिए काम करता हूँ, वह समाज मेरा अपमान करता है, तो मुझे क्यों इस झंझट में पड़ना चाहिए? मैं क्यों आगे आऊँ? उसका कर्तव्य है कि वह प्रसन्नता से अपमान के विष को पीए और समाज को मंगल-कल्याण का अमृत पिलाए।

नेतृत्व का सही मार्ग:

जब तक मनुष्य सम्मान पाने और अपमान से बचने का भाव नहीं त्याग देता, तब तक वह समाज उत्थान के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। ऐसा मनुष्य कभी समाज-सुधार के लिए नेतृत्व नहीं ग्रहण कर सकता।

स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति यह चाहता है कि समाज में वह जागृति और क्रांति लाए, उसके पुराने ढाँचे को तोड़ कर नया ढाँचा प्रस्तुत करे, तो आगे आने के लिए उसे पहले पहल अपमान की कड़ी चोट सहनी ही पड़ेगी। यदि नहीं सहेगा, तो वह आगे नहीं बढ़ पाएगा। भारत के मनीषियों का कहना है, कर्तव्य क्षेत्र में अपमान को आगे रखो और सम्मान को पीठ पीछे—

"अपमानं पुरस्कृत्य, मानं कृत्वा तु पृष्ठतः"

अपमान को देवता मानो :

यदि व्यक्ति समाज में क्रान्ति लाना चाहता है और समाज में नव-जीवन पैदा करना चाहता है, तो वह अपमान को देवता मानकर चले और यह समझ ले कि जहाँ भी जाऊँगा, मुझे अपमान का स्वागत करना पड़ेगा। वह सम्मान की ओर से पीठ फेर ले और समझ ले कि सारी जिन्दगी भर सम्मान से मुझे भेंट नहीं होने वाली है। और यह भी कि ईसा की तरह शूली पर चढ़ना होगा, फूलों की सेज पर बैठना मेरे भाग्य में नहीं बदा है। यदि ऐसी लहर लेकर चलेगा तभी व्यक्ति समाज का सही रूप से निर्माण कर सकेगा, अन्यथा नहीं।

मनुष्य टूटी-फूटी चीज को जल्दी सुधार देता है, और जब उस पर रंग-रोगन करना होता है, तो भी जल्दी कर देता है और उसे सुन्दर रूप से सजा कर खड़ी कर देता है। दीवारों पर चित्र बनाने होते हैं, तो सहज ही बना लिए जाते हैं। एक कलाकार लकड़ी या पत्थर का टुकड़ा लेता है और उसे काट-छांट कर शीघ्र मूर्ति का रूप दे देता है। कलाकार के अन्तस्तल में जो भी भावना निहित होती है, उसी को वह मूर्त रूप में परिणत कर देता है। क्योंकि ये सब चीजें निर्जीव हैं, वे कर्ता का प्रतिरोध नहीं करतीं हैं, कर्ता की भावना के अनुरूप बनने में वे कोई हिचकिचाहट पैदा नहीं करती हैं।

किन्तु समाज ऐसा नहीं है। वह निर्जीव नहीं है। उसे पुरानी चीजों को पकड़ रखने का मोह है, हठ है। जब कोई भी समाज-सुधारक उसे सुन्दर रूप में बदलने के लिए प्रयत्न करता है, तो समाज काठ की तरह चुपचाप नहीं रह जाएगा कि कोई भी आरी चलाता रहे और वह कटता रहे। समाज की ओर से विरोध होगा और सुधारक को उसका डटकर सामना करना पड़ेगा। समाज सुधारक के अन्तर्मन में यह वज्र साहस होना ही चाहिए कि लोग गालियां देते रहें, और वह हंसता रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज सुधार प्रेम से ही सम्भव :

सभा में बैठकर प्रस्ताव पास कर लेने मात्र से भी समाज-सुधार होने वाला नहीं है। यदि ऐसा संभव होता, तो कभी का हो गया होता। समाज सुधार के लिए तो समाज से लड़ना होगा, किन्तु वह लड़ाई क्रोध की नहीं, प्रेम की लड़ाई होगी।

डॉक्टर जब किसी ग्रामीण अशिक्षित व्यक्ति के फोड़े की चीराफाड़ी करता है, तब वह गालियाँ देता है और चीराफाड़ी न कराने के लिए अपनी सारी शक्ति खर्च कर देता है, किन्तु डाक्टर उस पर क्रोध नहीं करता, दया करता है और मुस्करा कर अपना काम करता जाता है। अन्त में जब रोगी को आराम हो जाता है, तो वह अपनी गालियों के लिए पश्चात्ताप करता है। सोचता है, उन्होंने तो मेरे आराम के लिए काम किया और मैंने उन्हें व्यर्थ में गालियाँ दीं। यह मेरी कैसी नादानी थी!

इसी प्रकार समाज की किसी भी बुराई को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जाएगा, तो समाज चिल्लाएगा और छटपटाएगा, किन्तु समाज-सुधारक को समाज के प्रति कुछ भी बुरा-भला नहीं कहना है। उसे तो मुस्कराते हुए, सहज भाव से, चुपचाप, आगे बढ़ना है और अपमान के हलाहल विष को भी अमृत के रूप में ग्रहण करके अपना काम करते जाना है। यदि समाज सुधारक ऐसी भूमिका पर आ जाता है, तो वह अवश्य आगे बढ़ सकेगा, निर्धारित कार्य कर सकेगा। विश्व की कोई शक्ति नहीं, जो उसे रोक सके।

भगवान् महावीर की क्रांति :

भगवान् महावीर बड़े क्रान्तिकारी थे। जब उनका आविर्भाव हुआ, तब धार्मिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में और दूसरे अनेक क्षेत्रों में भी अनेकानेक बुराइयाँ घुसी हुई थीं। उन्होंने अपनी साधना परिपूर्ण करने के पश्चात् धर्म और समाज में जबर्दस्त क्रान्ति की।

जाति-प्रथा का विरोध :

भगवान् ने जाति-पाँति के बन्धनों के विरुद्ध सिंहनाद किया और कहा कि मनुष्य मात्र की एक ही जाति है। मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई अन्तर नहीं है। लोगों ने कहा—यह नई बात कैसे कह रहे हो? हमारे पूर्वज कोई मूर्ख तो नहीं थे, जिन्होंने विभिन्न मर्यादा कायम करके जातियों का विभाजन किया। हम आप की बात मानने को तैयार नहीं है। किन्तु भगवान् ने इस चिल्लाहट की परवाह नहीं की, और वे कहते रहे—

"मनुष्यजातिरेकैव जातिकर्मोदयोद्भवा।"

जाति के रूप में समग्र मनुष्य-जाति एक ही है। उसके वर्णों, जातियों में टुकड़े नहीं किए जा सकते। उसमें जन्मतः ऊँच-नीच की कल्पना को कोई स्थान नहीं है। श्रेष्ठता या हीनता जन्म पर नहीं; अच्छे, बुरे अपने कर्म पर आधारित है।

नारी-उत्थान का उद्घोष :

भगवान् ने एक और उद्बोधन दिया—तुम लोग महिला-समाज को गुलामों की तरह रख रहे हो, किन्तु वे भी समाज की महत्त्वपूर्ण अंग हैं। उन्हें भी समाज में उचित स्थान मिलना चाहिए। इसके बिना समाज में समरसता नहीं आ सकेगी।

इस पर भी हजारों लोग चिल्लाए। कहने लगे—यह कहाँ से ले आए अपनी डफली, अपना राग? स्त्रियाँ तो मात्र सेवा के लिए बनी हैं, उन्हें कोई भी ऊँचा स्थान कैसे दिया जा सकता है?

केन्तु, भगवान् ने शान्त-भाव से जनता को अपनी बात समझाई और अपने संघ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वियों को वही स्थान दिया, जो साधुओं को प्राप्त था और श्राविकाओं को भी उसी ऊँचाई पर पहुँचाया, जिस पर श्रावक आसीन थे। भगवान् ने किसी भी योग्य अधिकार से महिला जाति को वंचित नहीं किया—पुरुषों के समान ही उसे गरिमा दी गई।

बलिप्रथा का विरोध :

यज्ञ के नाम पर हजारों पशुओं का बलिदान किया जा रहा था। पशुओं पर घोर अत्याचार हो रहे थे, घोर पाप का राज्य छाया हुआ था और समाज के पशुधन का कत्ले-आम हो रहा था। यज्ञों में हिंसा तो होती ही थी, उसके कारण राष्ट्र की आर्थिक स्थिति भी डाँवाडोल हो रही थी। भगवान् ने इन हिंसात्मक यज्ञों का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया।

उस समय समाज की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। राजा क्षत्रिय थे। और वे प्रजा पर शासन करते थे, किन्तु राजा पर भी शासन ब्राह्मणों का था। इस रूप में उन्हें राजशक्ति भी प्राप्त थी और प्रजा के मानस पर भी उनका आधिपत्य था। वास्तव में ब्राह्मणों का उस समय बड़ा वर्चस्व था, यज्ञों की बदौलत ही हजारों-लाखों ब्राह्मणों का भरण-पोषण हो रहा था। ऐसी स्थिति में, कल्पना की जा सकती है कि भगवान् महावीर के यज्ञविरोधी स्वर का कितना प्रचण्ड विरोध हुआ होगा! खेद है कि उस समय का कोई क्रमबद्ध इतिहास हमें उपलब्ध नहीं है, जिससे हम समझ सकें कि यज्ञों का विरोध करने के लिए भगवान् महावीर को कितना संघर्ष करना पड़ा और क्या-क्या सहन करना पड़ा। फिर भी आज जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका डटकर विरोध किया गया और खूब बुरा-भला कहा गया। पुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि उन्हें नास्तिक और आसुरी प्रकृति वाला तक कहा गया और अनेक तिरस्कारपूर्ण शब्द-बाणों की भेंट चढ़ाई गई। उन पर समाज के आदर्श को भंग करने का दोषारोपण तक भी किया गया।

फूलों का नहीं, शूलों का मार्ग :

अभिप्राय यह है कि अपमान का उपहार तो तीर्थंकरों को भी मिला है। ऐसी स्थिति में हम और आप यदि चाहें कि हमें सब जगह सम्मान ही सम्मान मिले, तो यह कदापि संभव नहीं। समाज-सुधारक का मार्ग फूलों का नहीं, शूलों का मार्ग है। उसे सम्मान पाने की अभिलाषा त्याग कर अपमान का आलिंगन करने को तैयार होना होगा, उसे प्रशंसा की इच्छा छोड़कर निन्दा का जहर पीना होगा, फिर भी शान्त और स्थिर भाव से सुधार के पथ पर अनवरत चलते रहना होगा। समाज-सुधारक एक क्रम से चलेगा। वह आज एक सुधार करेगा, तो कल दूसरा सुधार करेगा। पहले छोटे-छोटे टीले तोड़ेगा, फिर एक दिन हिमालय भी तोड़ देगा।

जागृति और साहस :

इस प्रकार, नई जागृति और साहसमयी भावना लेकर ही समाज-सुधार के पथ पर अग्रसर होना पड़ेगा और अपने जीवन को प्रशस्त बनाना पड़ेगा। यदि ऐसा न हुआ, तो समाज-सुधार की बातें भले कर ली जाएँ, किन्तु वस्तुतः समाज का सुधार नहीं हो पाएगा।

समाज-सुधार का मूल-मन्त्र :

शिशु जब माँ के गर्भ से जन्म लेकर भूतल पर पहला पग रखता है, तभी से समष्टि-जीवन के साथ उसका गठबन्धन आरम्भ हो जाता है। उसका समाजीकरण उसी उषा-काल से होना आरम्भ हो जाता है। जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर से अलग किसी अवयव-विशेष का कोई महत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार व्यक्ति का भी समाज से भिन्न कोई अस्तित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता है। किन्तु जिस प्रकार समग्र शरीर में किसी अवयव-विशेष का भी पूरा-पूरा महत्त्व होता है, व्यक्ति का भी उसी प्रकार समष्टि-जीवन में महत्त्व है। इस प्रकार अरस्तु ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' इस प्रकार अंगांगी-सावयव सिद्धान्त के आधार पर हम देखते हैं कि व्यक्ति और समाज के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक-दूसरे का पूरक है, एक दूसरे का परिष्कार एवं परिवर्द्धन करने वाला है। अतः दोनों का यह पावन कर्तव्य हो जाता है कि दोनों ही परस्पर सहयोग, सहानुभूति एवं सम्यक् संतुलन रखते हुए समष्टि रूप से मानव-जीवन का उत्थान करें।

महात्मा गाँधी ने इसी सिद्धान्त के आधार पर अपने सर्वोदयवाद की पीठिका का निर्माण किया था कि—"सबों के द्वारा सबों का उदय ही सर्वोदय है।" अर्थात् जब सभी एक-दूसरे के साथ मिलकर, परस्पर अनुरागबद्ध होकर, परस्पर सब के उत्थान का, हित का चिंतन करेंगे तथा तदनुरूप कार्य-पद्धति अपनाएंगे, तो समाज का स्वतः सुधार हो जाएगा।" सामाजिक पुनर्गठन अथवा पुनरुद्धार की जो बात महात्माजी ने चलाई, उसके मूल में यही भावना निहित थी। सहस्राधिक वर्ष पूर्व महान् आचार्य समन्तभद्र ने भगवान् महावीर के धर्मतीर्थ को इसी व्यापक भाव में सर्वोदय-तीर्थ के पवित्र नाम से अभिहित किया था—"सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।"

तात्पर्य यह कि समाज का सुधार तभी सम्भव है, जबकि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच परस्पर बन्धुत्व की उत्कट भावना, कल्याण का सरस प्रवाह हिलोरें मार रहा हो। इसी बन्धुत्व भाव के आधार पर दुनिया की तमाम असंगतियाँ, अव्यवस्थाएँ, अनीतिता, अनयता एवं अनाचारिता का मूलोच्छेदन हो जाएगा और समाज उत्थान की उच्चतम चोटी पर चढ़कर कल्याण की वंशी टेरने लगेगा। यही सारे सुधारों का केन्द्रबिन्दु है। भूतल को स्वर्ग बनाने का यही एक अमोघ मन्त्र है।

आज की गालियाँ : कल का अभिनन्दन :

स्मरण रखिए, आज का समाज गालियाँ देगा, किन्तु भविष्य का समाज 'समाज-निर्माता' के रूप में आपको सादर स्मरण करेगा। आज का समाज आपके सामने काँटे बिखेरेगा, परन्तु भविष्य का समाज श्रद्धा की सुमन-अंजलियाँ भेंट करेगा। अतएव आप भविष्य की ओर ध्यान रखकर और समाज के वास्तविक कल्याण का विचार करके, अपने मूल केन्द्र को सुरक्षित रखते हुए, समाज-सुधार के पुनीत कार्य में जुट जाएँ, भविष्य आपका है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org